CHETANA
INTERNATIONAL JOURNAL OF EDUCATION (CIJE)
Peer Reviewed/Refereed Journal
(ISSN: 2455-8729 (E) / 2231-3613 (P))
Impact Factor
SJIF 2023 - 7.286

Prof. A.P. Sharma
Founder Editor, CIJE
(25.12.1932 - 09.01.2019)

First draft received: 12.05.2023, Reviewed: 18.05.2023, Accepted: 20.06.2023, Final proof received: 30.06.2023

मध्यकालीन भक्ति चेतना – भक्तिकाल के संदर्भ में

डॉ. रिया
सहायक प्राध्यापक
श्री आर.आर.मोरारका राजकीय महाविद्यालय, झुंझुनू, राजस्थान
E-mail ID – riya.budania02@gmail.com, Mob. – 9461584540

सारांश

हिन्दी साहित्य के इतिहास में आचार्य शुक्ल ने संवत् 1375 वि.से संवत् 1700 वि. तक के काल को भक्तिकाल नाम से पुकारा। भक्तिकाल हिन्दी साहित्य के इतिहास का स्वर्ण युग माना जाता है, यद्यपि मध्यकाल को दो भागों में बांटागया है – पूर्व मध्यकाल व उत्तर मध्यकाल, पूर्व मध्यकाल भक्तिकाल के नाम से जाना गया व उत्तर मध्य रीतिकाल नाम से। भक्तिकाल भी शाखाओं में बंटा क्योंकि एक वर्ग ईश्वर के निर्गुण निराकार रूप को पूजने वाला था तो दूसरा सगुण साकार, परिणामस्वरूप निर्गुण काव्यधारा प्रेमाश्रयी (ज्ञानाश्रयी) व सगुण का. (राम का., कृष्ण का.) अस्तित्व में आई। निर्गुण वाले ज्ञान व प्रेम को आधार मानकर ईश्वर को पाना चाह रहे थे जबकि सगुण वालों के अराध्य, ईष्ट राम व कृष्ण थे। जिनकी पूजा–उपासना व भक्ति करके वे अपने कष्टों का निराकरण चाह रहे थे।

मुख्य शब्द : भक्तिकाल, काव्यधारा, मूर्तिपूजा, प्रेमाश्रयी आदि.

हिन्दी साहित्य के इतिहास में आचार्य शुक्ल ने संवत् 1375 वि.से संवत् 1700 वि. तक के काल को भक्तिकाल नाम से पुकारा। भक्तिकाल हिन्दी साहित्य के इतिहास का स्वर्ण युग माना जाता है, यद्यपि मध्यकाल को दो भागों में बांटागया है – पूर्व मध्यकाल व उत्तर मध्यकाल, पूर्व मध्यकाल भक्तिकाल के नाम से जाना गया व उत्तर मध्य रीतिकाल नाम से। भक्तिकाल भी शाखाओं में बंटा क्योंकि एक वर्ग ईश्वर के निर्गुण निराकार रूप को पूजने वाला था तो दूसरा सगुण साकार, परिणामस्वरूप निर्गुण काव्यधारा प्रेमाश्रयी (ज्ञानाश्रयी) व सगुण का. (राम का., कृष्ण का.) अस्तित्व में आई। निर्गुण वाले ज्ञान व प्रेम को आधार मानकर ईश्वर को पाना चाह रहे थे जबकि सगुण वालों के अराध्य, ईष्ट राम व कृष्ण थे। जिनकी पूजा–उपासना व भक्ति करके वे अपने कष्टों का निराकरण चाह रहे थे। दो संस्कृतियां आपस में टकरा रही थी। हिन्दु धर्म स्वयं आंतरिक विखण्डन से ग्रसित हो रहा था जबकि मुस्लिम धर्म उस पर हावी होने का प्रयास कर रहा था। हिन्दु और मुस्लिम संस्कृति समाज में दो खाइयां बना चुकी थी जिन्हे पाटना असंभव हो रहा था। यह दूरी मिटाने का प्रयास तत्कालीन संतो व भक्तों ने किया।

यद्यपि इन संतो व भक्तों की सूची खूब लंबी है किंतु मैं भक्तिकाल के आधार स्तम्भ कवियों का योगदान भक्ति चेतना के संदर्भ में बताना चाहूंगी। आखिर ऐसा क्या है जो इतनी शताब्दियों के बाद भी कबीर के दोहे, जायसी का पद्मावत, तुलसी का रामचरित्मानस, विनयपत्रिका, सूर का सूरसागर, मीरां के पद आज भी भारतीय जनमानस से गुंजते है। इनके ये ग्रंथ घरों में धार्मिक ग्रंथों का स्थान पाये है तो मंदिरों में निरंतर बजने का अधिकार। इनकी रची पंक्तियां भारतीय समाज में इतनी रच–बस गयी है कि अनपढ. व्यक्ति भी इनका उच्चारण करते मिल जायेंगे।

प्रारंभ कबीर से ही करते है, एक ऐसा नाम जो भारतीय जन–जीवन का हिस्सा है। कारण स्पष्ट है समाज के नीचे के तबके से उठा, आडम्बरों व कुरीतियो का विरोध किया, बिना किसी लाग–लपेट, बेबाकी से समाज को अपने विचारों से अवगत कराया। एकनिष्ठ साधना के समर्थक कबीर ''एक साधे सब सधे सब साधे सब जाय'' की राह पर ही चलना स्वीकारते थे।

पाहन पूजें हरि मिले, तो मैं पूजूं पहार।
तातै या चाकि भीली, पीस खाय संसार।

जैसी पंक्तियों से उन्होने केवल मूर्तिपूजा का ही विरोध नही किया अपितु कर्मवाद का सिद्वांत भी दिया। कबीर का चिंतन न हिंदुओं के लिए था न मुसलमानों के लिए वह मानव मात्र के लिए था। उन्होंने दलितों, उपेक्षितों, स्त्रियों, शूद्रों के लिए एक ज्ञान मार्ग बनाया जो अक्षर ज्ञान ना होकर आत्म ज्ञान का मार्ग था। मनुष्य के ह्रदय का विस्तार चाहते थे कबीर ताकि तेरे–मेरे की भावना समाप्त हो जायें व समाज में सुख–शांति बनी रहे। वही निर्गुण की प्रेमाश्रयी काव्यधारा के प्रवर्तक जायसी 'पद्मावत' की रचना कर सूफी काव्य परंपरा के श्रेष्ठ रचनाकार सिद्ध हो गये। 'पद्मावत' एक 'समासोक्ति' रचना है जो इश्क मजाजी (लौकिक प्रेम) के द्वारा इश्क हकीकी (ईश्वरीय प्रेम) को पाना बताती है। गौर करने की बात यह है कि जायसी ने मुस्लिम होते हुए भी अपने काव्य में हिन्दुओं के परिवेश का चित्रण अधिक किया है। प्रेम की महत्ता इस ग्रंथ में दर्शायी गयी है जो कि तत्कालीन समाज के लिए अतिआवश्यक थी। प्रेमी व्यक्ति दोनों संसारों से पार पा जाता है–

भले ही प्रेम है कठिन दुहेला।
दुइ जग तरा प्रेम जोहि खेला।।

जायसी के काव्य का सार है मानव का मानव के प्रति प्रेम। प्रेम को ही उन्होने सबसे बड़ा पुरूषार्थ माना है। वही सूरदास जी ने भी प्रेम तत्व को प्रधानता दी। वह भी वर्ण, जाति से उपर उठकर। कृष्ण को उन्होने लोकरक्षक के रूप में दिखाया। महारास को 'जीवन महोत्सव' माना है जिसमें स्त्रियां अपनी मर्यादा, लोक–लाज त्याग कर जाती है। गोपियों की वाग्विदग्धता, कृष्ण की बाल–लीला, वियोग वर्णन ऐसी अवस्थायें है जो समाज को नये सिरे से समझने पर विवश करती है। बाबा तुलसीदास की भक्ति व काव्य रचना तो विराट समन्वय है। वे समाज के हर वर्ग को समानता का अधिकार दिलाना चाहते है। वे समाज की विषमता को दर्शाते है–

खेती न किसान की भिखारी को न भीख भलि।
बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी।।

वही दूसरी तरफ रामराज्य की कल्पना करते है। आदर्शों की स्थापना व समाज का सुंदर रूप देखना चाहते है, महान–कवि तुलसीदास। इस भक्ति चेतना में मीरा का स्थान तो अद्वितीय है। मीरां 'पग घूंघरू बांध नाची' ही नही बल्कि भारतीय स्त्री को एक नयी राह दिखायी। एक भोग की वस्तु नारी को मीरां ने सामंती बंधनों से मुक्त कराया। मीरां की भक्ति धर्म के ठेकेदारों के मुंह पर तमाचा थी।
भक्तिकालीन चेतना आज के युग में मानवतावाद, विश्व–बंधुत्व, स्त्री स्वतंत्रता, भाईचारा, साम्प्रदायिक सौहार्द के रूप में प्रासंगिक है।